कायोत्सर्ग : काया से असंगता

श्री कन्हैयालाल लोढ़ा

साधक के आत्मिक गुणों के घात को जैनागमों में अतिचार कहा है। अतिचारों के शोधन के लिए प्रतिक्रमण में पाँचवें आवश्यक के रूप में कायोत्सर्ग का विधान किया गया है। आदरणीय लोढ़ा सा. के अनुसार कायोत्सर्ग का तात्पर्य है काया से अपने को पृथक् समझना, असंग हो जाना, देहातीत हो जाना। लेख में कायोत्सर्ग पर सूक्ष्म चिन्तन प्रस्फुटित हुआ है। *-सम्पादक*

प्रतिक्रमण के साथ कायोत्सर्ग का घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रतिक्रमण चतुर्थ आवश्यक है तो कायोत्सर्ग पाँचवाँ आवश्यक। कार्योत्सर्ग षडावश्यक का एक अंग है। कायोत्सर्ग का अर्थ है- काया का उत्सर्ग करना, देहातीत अवस्था का अनुभव करना। अनुयोगद्वार सूत्र में कायोत्सर्ग को 'व्रण-चिकित्सा' कहा है, जो उपयुक्त ही है। कारण कि भोगासक्ति, मोह, असंयम आदि दोषों के कारण आत्मा के ज्ञानदर्शन-चारित्र गुणों का घात करने रूप घाव हो जाते हैं। उन घावों का उपचार (चिकित्सा) कायोत्सर्ग है। साधक के आत्मिक गुणों के घात (घाव) को जैनागमों में अतिचार कहा है। इन अतिचारों के विशोधन के लिये ही कायोत्सर्ग का विधान है, जैसा कि आवश्यक सूत्र के पाँचवें आवश्यक कायोत्सर्ग के प्रतिज्ञा पाठ में कहा है :-

''आवस्सं हि इच्छाकारेणं संदिसह भगवं! देवसिय-पडिक्कमणं ठाएमि देवसिय-णाण-दसण-चरित्त-तव-अइयार-विसोहणट्ठं करेमि काउस्सग्गं।''

अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप के अतिचारों के विशोधनार्थ कायोत्सर्ग करता हूँ। अतिचारों से रहित होना, निर्दोष होना है। इस प्रतिज्ञा पाठ के पश्चात् सामायिक सूत्र 'करेमि भंते का पाठ', प्रतिक्रमण सूत्र (इच्छामि ठामि काउसग्गं का पाठ) तथा कायोत्सर्ग सूत्र (तस्स उत्तरीकरणेणं का पाठ) बोले जाते हैं, जो कायोत्सर्ग अर्थात् देहातीत होने के लिये साधन रूप हैं।

कायोत्सर्ग अर्थात् देहातीत अवस्था का अनुभव करने के लिये अंतर्मुखी होना और बहिर्मुख प्रवृत्ति रहित होना आवश्यक है। बहिर्मुख वह ही होता है, जिसकी मन, वचन व शरीर की क्रियाएँ बहिर्गमन कर रही हैं। इसे आगम में सावद्य योग कहा है। सावद्य योग में कर्तृत्व, भोक्तृत्व (फलाकांक्षा) भाव होने से राग-द्वेष उत्पन्न होता है, जिससे समत्वभाव भंग होता है। समत्व के अभाव में कोई भी साधना व चारित्र संभव नहीं है। अतः 'करेमि भंते' के पाठ से समत्व को ग्रहण करने के लिये सावद्य योग का त्याग किया जाता है। इसे ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक चारित्र कहा है। पाठ का भावार्थ है- "हे भगवन्! मैं पापकारी सावद्य प्रवृत्तियों को त्यागकर सामायिक (समत्व) ग्रहण करता हूँ। मैं मन, वचन, और शरीर से पाप कर्म न स्वयं करूँगा, न दूसरों से कराऊँगा और न पाप कर्म करते हुए को भला मानूँगा। हे भगवन्! मैं पाप कर्मों का प्रतिक्रमण करता हूँ, निन्दा करता हूँ, त्याग करता हूँ और अपने को पापकारी क्रियाओं से अलग (असंग) करता हूँ।

प्रतिक्रमण द्वारा पापों से मुँह मोड़े (विमुख हुए) बिना कायोत्सर्ग साधना संभव नहीं है। अतः इसके लिए प्रतिक्रमण सूत्र का विधान है, जिसका भावार्थ है :-

मैं प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ। मैंने दिन में जो कायिक, वाचिक तथा मानसिक अतिचार (दोष) किए हों, जो सूत्र से, मार्ग से, आचार से विरुद्ध है, नहीं करने योग्य है, दुर्ध्यान रूप है, अनिष्ट व अनाचरणीय है, साधु के लिये अनुचित है, इन अतिचारों से तीन गुप्ति, चार कषायों की निवृत्ति, पाँच महाव्रत, छह जीव निकायों की रक्षा, सात पिण्डैषणा, आठ प्रवचन माता, नौ ब्रह्मचर्य, दशविध श्रमण धर्म संबंधी कर्त्तव्य, यदि खण्डित हुए हों अथवा विराधित हुए हों तो वे सब पाप मेरे लिए मिथ्या अर्थात् निष्फल हों।

इसके पश्चात् कायोत्सर्ग के विधान का सूत्र पाठ है, जिसका पाठ निम्न प्रकार है, यथा- तस्सउत्तरीकरणेणं पायच्छित्तकरणेणं विसोहिकरणेणं विसल्लीकरणेणं पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं......... तावकायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि।

"आत्मा की उत्कृष्टता-श्रेष्ठता के लिये, दोषों के प्रायश्चित्त के लिये, विशेष शुद्धि करने के लिये, शल्य रहित होने के लिए, पाप कर्मों का पूर्णतया विनाश करने के लिये मैं कायोत्सर्ग करता हूँ। कायोत्सर्ग में श्वासोच्छ्वास, खाँसी, छींक, जंभाई, डकार, अपानवायु, चक्कर, पित्त की मूर्च्छा, अंग, कफ व दृष्टि के सूक्ष्म संचार से, अर्थात् शारीरिक क्रियाओं के अशक्य परिहार के अतिरिक्त काया के व्यापारों से निश्चल व स्थिर रहकर, वाणी से मौन रहकर, मन से ध्यानस्थ होकर अपने को शरीर से परे करता हूँ। यहाँ हमें स्मरण रखना चाहिए कि 'अप्पाणं वोसिरामि' का अर्थ आत्मा का विसर्जन करना नहीं है, अपितु देह के प्रति अपनेपन के भाव का विसर्जन करना है, क्योंकि विसर्जन व परित्याग आत्मा का नहीं, अपनेपन के भाव अर्थात् ममत्व बुद्धि का होता है। जब कायिक, वाचिक और मानसिक क्रियाओं पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित हो जाता है तभी ध्यान की सिद्धि होती है और जब ध्यान सिद्ध हो जाता है तो आत्मा अयोग दशा अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। अतः यह स्पष्ट है कि ध्यान मोक्ष का अन्यतम कारण है।" -आगार सूत्र (श्रमणसूत्र-अमरमुनि), पृष्ठ ३७६

देह, शरीर एवं तन काया के ही पर्यायवाची शब्द हैं। वर्तमान में काया के स्थान पर देह तथा शरीर शब्द का अधिक प्रयोग होता है। इस दृष्टि से 'कायोत्सर्ग' का अर्थ हुआ देह का उत्सर्ग, शरीर का उत्सर्ग।

जीव का सबसे अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध देह (काया) से है। इन्द्रिय, मन, बुद्धि देह के ही अंग हैं। देह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से भिन्न इनका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। इसलिये देहान्त होते ही इनका भी अन्त हो जाता है। श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना, स्पर्शन इन्द्रियाँ एवं मन जब अपने विषयों में प्रवृत्ति करते हैं, तब इनका वस्तुओं से अर्थात् संसार से सम्बन्ध होता है।

इस प्रकार शरीर का इन्द्रिय तथा वस्तुओं से एवं संसार से संबंध स्थापित होता है। अतः शरीर, इन्द्रियाँ, मन तथा इनकी विषय-वस्तुएँ एवं संसार, इन सबमें जातीय एकता है। ये सब एक ही जाति 'पुद्गल' के रूप में हैं। पुद्गल उसे कहते हैं जिसमें जल के बुद्बुदे की तरह उत्पत्ति और विनाश हो, जो क्षणभंगुर हो। विनाशी होने से देह से सम्बन्धित इन्द्रियाँ, मन, विषय एवं संसार की समस्त दृश्यमान वस्तुएँ नश्वर, परिवर्तनशील, अनित्य, अध्रुव, क्षणभंगुर हैं और एकही जाति की हैं। इनका परस्पर में घनिष्ठ संबंध है। इनमें जातीय एकता है, प्रवृत्ति की भिन्नता है; परन्तु देह में निवास करने वाली आत्मा जो इन सबके परिवर्तनशील रूप व नश्वरता की ज्ञाता है, वह अपरिवर्तनशील, अविनाशी, ध्रुव व नित्य है। इस प्रकार शरीर और संसार के समस्त पदार्थ विनाशी होने से अविनाशी आत्मा से भिन्न स्वभाव वाले होते हैं। इन पदार्थों की अधीनता पराधीनता है।

आत्मा देह से दो प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करती है - अभेद भाव का तथा भेदभाव का। मेरी देह है, मेरी इन्द्रियाँ हैं ऐसा ममता रूप सम्बन्ध स्वीकार करना भेदभाव का संबंध है। मैं देह हूँ, देह का अस्तित्व ही मेरा अस्तित्व है। देह में ऐसा अहंभाव, अहंकार, अभिमान होना अभेदभाव का सम्बन्ध है। 'मैं' (अहन्ता) अभेद भाव के सम्बन्ध का और 'मेरापन' (ममता) भेदभाव के सम्बन्ध का द्योतक है।

देह या शरीर संसार की जाति का होने से संसार का ही अंग है। अंग अंगी से अभिन्न होता है। अतः देह से सम्बन्ध स्थापित करते ही संसार से सम्बन्ध हो जाता है। यह नियम है कि जिससे संबंध हो जाता है उससे जुड़ाव हो जाता है। जुड़ाव होना, अर्थात् किसी से जुड़ना ही उससे बन्धना है। सम्बन्ध शब्द बना ही 'बन्ध' शब्द से है। इन्द्रियाँ देह की अंग हैं। अतः देह से सम्बन्ध होने से इन्द्रियों से सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इन्द्रियों का कार्य शब्द, रूप आदि विषयों में प्रवृत्ति व कर्म करना है। विषयों का संबंध वस्तु से है और वस्तुओं का सम्बन्ध संसार से है। इस प्रकार देह का इन्द्रियों से, इन्द्रियों का विषयों से, विषयों का वस्तुओं से और वस्तुओं का संसार से सम्बन्ध स्थापित होता है। अतः देह से सम्बन्ध स्थापित करना समस्त संबंधों का एवं समस्त बन्धनों का कारण है।

बन्धन-मुक्त होने के लिए सम्बन्ध-मुक्त होना आवश्यक है। संबंध-मुक्त होने के लिए देह से सम्बन्ध विच्छेद करना आवश्यक है। देह (काया) से सम्बन्ध विच्छेद होना कायोत्सर्ग है। काया का इन्द्रियों से अंग-अंगी संबंध है। अतः कायोत्सर्ग से इन्द्रियों से और उनके विषयों से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है जिससे विषयासक्ति (कषाय) से और विषयों से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। विषयासक्ति से रहित होने पर कर्तृत्व व भोक्तृत्व भाव का अन्त हो जाता है। जिससे कर्मबन्धन का कार्य बन्द हो जाता है और कर्मोदय का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभाव बलहीन हो जाता है। अर्थात् कर्म का व्युत्सर्ग हो जाता है। भोगासक्ति या कषाय का विच्छेद (क्षीण होना) कषाय-व्युत्सर्ग है। संसार से सम्बन्ध-विच्छेद होना संसार-व्युत्सर्ग है। आशय यह है कि कायोत्सर्ग से, देहाभिमान रहित होने से शरीर, संसार, कषाय व कर्म का व्युत्सर्ग हो जाता है। अर्थात् इनके बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है।

कर्तृत्वभाव से की गई प्रवृत्ति श्रमयुक्त होती है। श्रम काया के आश्रय के बिना, पराधीन हुए बिना नहीं हो सकता। काया के आश्रित तथा पराधीन रहते हुए काया से असंग होना सम्भव नहीं है। काया से असंग हुए बिना कायोत्सर्ग नहीं है। कायोत्सर्ग के बिना अर्थात् काया से जुड़े रहते जन्म-मरण, रोग-शोक, अभाव, तनाव, हीनभाव, द्वन्द्व आदि दुःखों से मुक्ति कदापि सम्भव नहीं है। अतः समस्त श्रमसाध्य प्रयत्नों एवं क्रियाओं या प्रवृत्तियों से रहित होने पर कायोत्सर्ग होता है। कायोत्सर्ग से ही निवार्ण प्राप्त होता है एवं सर्व दुःखों से मुक्ति होती है।

-८२/१४१, मानसरोवर, जयपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org